स्वच्छता की सामाजिकी और रेलवे के स्वच्छकार

सुमित उज्जैनवाल

> पहले दिन जब मैं शौचालय और नाली साफ़ कर रही थी, मेरा पैर फिसल गया और पिंडली तक मल में डूब गई। मैं चीख़ उठी और भाग गई। उसके बाद मैं घर आई और रोती रही। मैं जानती थी कि मेरे लिए सिर्फ़ यही काम है।
>
> – सोना, भरतपुर शहर, राजस्थान

सामाजिक संबंध और स्वच्छता के बीच अंतर्संबंधों के अध्ययन में शामिल सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा मल या मल-व्ययन का है। कई संक्रामक रोगों के प्रसार में मानवीय मल को प्रधान कारक समझा जाता है। भारत में मल को अशुद्ध समझा जाता है। पारंपरिक प्रथाएँ मल के वैज्ञानिक निपटारे के साथ सामंजस्य नहीं रख पाई हैं, जिसका परिणाम विचित्र प्रणालियों में हुआ है, ख़ास कर हमारे बाद किसी के सफ़ाई के लिए तैनात होने के रूप में।[1] इसी क्रम में दूसरी ओर नैमित्तिक कर्म के तौर पर मल से दूरी बनाए नहीं रखी जा सकती। यानि मल-व्ययन के कार्य हेतु किसी न किसी को तो रखना ही होगा। मल-व्ययन को लेकर विकृत मानसिकता और मान्यताओं को लेकर समाज विज्ञान में वाद-विवाद हमेशा होता रहा है।[2]

इस आलेख में स्वच्छता और समाजशास्त्र को भारतीय रेलवे के विशेष संदर्भ में देखने की कोशिश की गई है। रेलवे परिसर पर स्वच्छता प्रबंधन नीति के असर के साथ ही इस सवाल पर भी बात होगी कि मशीनीकरण पर आधारित स्वच्छता प्रबंधन का अस्थाई श्रमिकों की वर्किंग कंडीशन, वेतन और सामाजिक सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा? इस संदर्भ में पूरी चर्चा दिल्ली तथा जयपुर मंडल की केस स्टडीज़ के मद्देनज़र की गई है। इस पर भी चर्चा की गई है कि शुचिता का प्रश्न और जातिगत व्यवसाय, कैसे एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। हालाँकि रेलवे में 1990 के उपरांत लागू निजी स्वच्छता प्रबंधन के बाद से सवर्ण जाति के लोग भी

[1] गीता रामास्वामी (2005) : 14.

[2] श्रम व्यक्ति विशेष के प्रमुख उद्देश्य को पूरा करने की गतिविधि है। इसके माध्यम से व्यक्ति विशेष प्राकृतिक वस्तु को प्राप्त कर उस पर श्रम लगाकर अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करता है। किसी भी प्रकार की श्रम प्रक्रिया में व्यक्ति विशेष अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति लगाता है. श्रम करने का परिणाम प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तु के रूप में उसे मिलता है। एक स्थिति (कंडीशन) का परिणाम है। इसका अध्ययन भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों में किया गया है. जहाँ एक तरफ़ प्राकृतिक विज्ञान (नेचुरल साइंस) के अंतर्गत श्रम का अध्ययन मनोवैज्ञानिक पहलुओं के मद्देनज़र रखते हुए किया जाता है। वहीं दूसरी तरफ़ सोशल साइंस में लेबर का अध्ययन श्रम की सामाजिक-आर्थिक अवधारणाओं के मद्दे नज़र किया जाता है.

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 368

साफ़-सफ़ाई के रोज़गार में आए हैं परंतु मैला साफ़ करने का काम आज भी दलित जातियों से ही करवाया जा रहा है।

रेलवे के इतिहास में निजीकरण या पी.पी.पी. (यानि पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप) का प्रारंभ से ही विशेष महत्त्व है।[3] इस दृष्टि से यह शोध कार्य संगठित तथा असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों यानि दोनों क्षेत्रों के विश्लेषण की दृष्टि से विशेषकर रेलवे सेवा नियम एवं श्रम संहिता 1994 में सरकारी मुलाज़िमों को विशेष सुरक्षा दिए जाने से संबंधित विषयों के तुलनात्मक अध्ययन और ग़ैर सरकारी झाड़ूकशों के लिए किए गए प्रयोगात्मक मॉडल के इर्द-गिर्द ही रहेगा।

शुचिता और जाति

फिलिप कल्लेट अपनी पुस्तक *सैनिटेशन लॉ ऐंड पॉलिसी इन इंडिया* में शोधपरक दस्तावेज़ों, तथ्यों के माध्यम से खुलासा करते हुए कहते हैं– भारत में शुचिता/स्वच्छता की अवधारणा को अर्थपूर्ण रूप में तभी समझ सकते हैं या अभिव्यक्त कर सकते हैं, जब उसमें स्वच्छता के सामाजिक, आर्थिक तथा श्रम संबंधित आयामों को मद्देनज़र रखा गया हो।

आत्मदर्शन के ज्ञान पर आधारित भारतीय विचार का बुनियादी आधार आध्यात्मिकता है, वहीं दूसरी ओर श्रम यानि स्वच्छकारों की दयनीय स्थिति सीवरों में होती मौत की ख़बरें, मैला साफ़ करने की प्रथा इत्यादि गंभीर विषय हैं। योग-सूत्रकार पतंजलि ने शुचिता के दो स्थूल और पाँच सूक्ष्म, कुल सात नतीजे बताए गए हैं। लेकिन इनमें कहीं भी सार्वजनिक स्थानों पर पड़े मल को ठिकाने लगाने की ज़िम्मेदारी तय नहीं की गई। परिणामस्वरूप मल को उठाने वाले को अशुद्ध और खुले में मल या गंदगी फ़ैलाने वालों को शुद्ध मान लिया गया।

जब-जब भारत में जानलेवा प्लेग, हैज़ा, कोविड-19 इत्यादि संक्रमण फैले, तब-तब इन्हीं स्वच्छकारों ने अपने प्राण संकट में डालकर हिंदुओं और अन्य देशवासियों की जान बचाई। इसके बावजूद दुर्भाग्यवश स्वच्छता सैनिकों से देश में घृणा की जाती रही। मुस्लिम समाज में भी इन जातियों के लोगों की हालत कोई बहुत बेहतर नहीं है। उनके साथ भी छुआछूत बरती जाती है। उनकी मस्जिद अलग होने तक का उल्लेख मिलता है।[4] सिख समाज के भीतर भी जातिवाद होता है। भारत में बसने वाले विभिन्न ईसाई समाज भी इससे अछूते नहीं हैं। कुछ

---

[3] पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप या सार्वजनिक साझेदारी एक ऐसी अवधारणा है जिसका महत्त्व राज्य के बदलते कार्यों के संदर्भ में और भी बढ़ जाता है. उपरोक्त अवधारणा के अंतर्गत राज्य का लोकसेवा सामाजिक सुधार एवं आर्थिक विकास के मोर्चे पर अपने कार्य का सफलतापूर्वक निष्पादन करना एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गया है. इसका प्रचालन 1970 के दशक से ही शुरू होता है. विशेषकर अमेरिका एवं इंग्लैंड में आज विकसित और विकासशील दोनों प्रकार के राज्यों में लोक-नीति से संबंधित विभिन्न प्रकार की योजनाओं में साझेदारी का व्यावहारिक प्रयोग किया जा रहा है. सार्वजनिक के क्षेत्र में निजी साझेदारी एक नए समाजशास्त्र के तौर पर प्रकट होती है. इसका उद्देश्य निजी क्षेत्र को सामुदायिक कार्यों हेतु प्रबंधीय ज़िम्मेदारी सौंपते हुए सार्वजनिक को ज़्यादा उत्पादक बनाना है.

[4] शबनम बेग (2008) : 24.

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 369

जातियों के हज़ारों-लाखों लोगों को मैला उठाने में झोंकने की ज़िम्मेदारी हिंदू समाज की तो निश्चित ही है, परंतु इसकी जवाबदेही से कोई धर्म, कोई संप्रदाय अछूता नहीं रहा है।

स्वच्छता का विज्ञान, श्रम संबंध तथा औपनिवेशिक विमर्श

'स्वच्छता का ज्ञान' हमारी स्वास्थ्य सुरक्षा की ज़रूरत के सवाल से जुड़ा हुआ है। महामारियों, हैज़ा, प्लेग इत्यादि से बचने के लिए नागरिक समाज में दलितों के श्रम का इस्तेमाल किया जाता रहा है। यद्यपि इस स्वच्छता के ज्ञान की अवधारणा का विकास ब्रिटिश सरकार के आगमन के उपरांत ही हुआ। इसके बावजूद दूसरी तरफ़ सच्चाई यह भी है कि ब्रिटिश सरकार का ध्यान दरअसल इसके प्रबंधन पर ही था। यानि ऐसी कौन-सी व्यवस्था हम स्थापित करें जिसमें म्युनिसिपल कॉरपोरेशन उस पर उचित ख़र्च कर सके?

भारतीय संदर्भ में सामाजिक संरचना तथा रेलवे के विकास संबंधित सूचनाएँ हमें राष्ट्रीय अभिलेखागार से मिलती हैं। इनका बारीकी से अध्ययन करने वाले विद्वानों में निवेदिता मेनन, संजय पलशीकर, आदित्य निगम (*क्रिटिकल स्टडीज़ इन पॉलिटिक्स : 2014*) और विजय प्रसाद (*ए सोशल हिस्ट्री ऑफ़ ए दलित कम्यूनिटी : 2000*) शामिल है। भारत की राजधानी की शहरी संरचना निर्मित होने से पहले स्वच्छकार (भंगी) गली-कूचों या मोहल्लों में निजी कर्मचारी के रूप में कार्य करना प्रारंभ करते हैं।

वीना ऑल्डेनबर्ग का तर्क है कि 1857 के विद्रोह के उपरांत अंग्रेज़ी के हुकूमतकारों ने शहरी पुनर्संरचना की शुरुआत की।[5] निवेदिता मेनन का मानना है कि औपनिवेशिक काल में इस प्रकार के मेडिकल इंटरवेंशन, ख़ासकर हैज़ा जैसी महामारियों के इर्द-गिर्द अंग्रेज़ी सरकार द्वारा की गई गतिविधियाँ राजनीतिक तार्किकता का परिणाम थीं।[6] इस पूरी प्रकिया के संदर्भ में स्वच्छकार समाज के बुद्धिजीवी ओमप्रकाश वाल्मीकि, विलियम जॉन्स के लेख का ज़िक्र करते हुए कहते हैं कि यदि भारतीय समाज में क़ायम भेद-भाव, विषमता, जातीय वैमनस्य, अस्पृश्यता का समान रीति से अनुसरण किया जाए तो 'करोड़ों हिंदू प्रजा' का सुनिर्दिष्ट श्रम ब्रिटेन की श्रीवृद्धि में सहायक होगा। ठीक इसी तरह के विचार उषा राव ने भी व्यक्त किए हैं। अंग्रेज़ों के आगमन के पश्चात् सफ़ाई का काम संगठित पेशा बन गया। सैनिक छावनियों तथा नगरपालिकाओं की स्थापना के बाद भंगियों की आवश्यकता तेज़ी से महसूस की गई।[7]

यूरोप और अमेरिका आधुनिकीकरण की ओर तेज़ गति से बढ़ रहे थे। उस समय भारत एक पिछड़ा हुआ देश था। ब्रिटिश उपनिवेश की स्थापना से पहले भी भारत में उन तत्त्वों का अभाव था जो भारत को आधुनिकीकरण की दिशा में ले जाते। मसलन यहाँ जाति-प्रथा का

---

[5] वीना ऑल्डेनबर्ग : (1989).

[6] श्रीरमण तरगंगिन : (2014).

[7] एन. जे. उषा राव (1999) : 62.

कठोर ढाँचा मज़बूत था।[8] अब ऐसे में स्वच्छकार भंगी को अपनी स्थिति में सुधार कर सामाजिक सम्मान पाने का अवसर मिल जाए और उसके परंपरागत व्यवसाय में परिवर्तन हो जाए, इसका सवाल ही नहीं उठता था। इससे डी. एल. सेठ के इस विचार पर तर्क करना सही होगा कि 'औपनिवेशिक राज्य ने दो भूमिकाएँ अख़्तियार कीं – प्रथम उसने पारंपरिक श्रेणीक्रम में जातियों की विवादित स्थितियों को स्थापित किया और दूसरा, एक न्यायपूर्ण और आधुनिक शासक के रूप में उसने अपनी कमज़ोर और ग़रीब जनता के अधिकारों को चिह्नित करना चाहा। डी.एल. सेठ के प्रथम तर्क से मैं सहमत हूँ लेकिन दूसरे तर्क के संदर्भ में मुझे लगता है कि स्वच्छकारों के अधिकारों और न्याय के संदर्भ में ब्रिटिश सरकार कोई ख़ास मुक्तिपरक रास्ता खोज नहीं पाई।[9]

ब्रिटिश सेना को सुरक्षित बचाए रखने के लिए सैनिक छावनियों में साफ़-सफ़ाई रखना ज़रूरी था इसलिए वे भंगियों को अपने साथ रखते थे। अकील अहमद अपने लेख 'द मेकिंग ऑफ़ साइंस ऐंड टेक्नोलॉजी प्लान' में बताते हैं कि दरअसल ब्रिटिश शासनकाल में भारत में वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के लिए नीति-निर्माण नहीं किया गया, वास्तव में उन्होंने अपने शासन काल में महामारियों से बचने हेतु जन्म-दर और मृत्यु-दर से संबंधित गणना और शोध-कार्यों का आयोजन किया (अक़ील अहमद, 1993)।

ब्रिटिश शासकों ने 'स्वच्छता पर आधारित ज्ञान' और जाति-आधारित व्यवस्था से लाभ उठाया और स्वच्छकारों को इस व्यवस्था में शामिल किया। इस प्रकार औपनिवेशिक अर्थतंत्र में दलितों को कुछ हद तक रोज़गार तो मिला, पर साथ ही छुआछूत की दीवार भी मज़बूत हुई। इसके कारण शुद्ध और अशुद्ध जातियों के बीच का विभाजन नए सिरे से रचा गया जिसमें उन्हें तरह-तरह से नुक़सान और लाभ हुआ (ओवेन एच. लिंच, 1969, नंदिनी गुप्त, 2001)। कई अध्ययन हमारा ध्यान औपनिवेशिक दौर में दो परस्पर विरोधी प्रक्रियाओं की ओर आकर्षित करते हैं। एक ओर जातियों का नकार हुआ तो दूसरी और

[8] इस संदर्भ में रामशरण जोशी अपने लेख जाति, वर्ग, टेक्नोलॉजी, और आधुनिकता में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ग्रामीण भारत की कृषि-श्रम शक्ति और दस्तकारी के आधार लुहार, बढ़ई, मोची, मैला-ढोने वाला वाल्मीकि समाज रहा, लेकिन उत्पादन के साधनों पर उनका कभी नियंत्रण नहीं रहा.

[9] दलित वर्ग सम्मेलन नागपुर, 1930 में डॉ. आंबेडकर द्वारा दिया गया भाषण एम.पी गुंजार (सं.) डॉ. बाबा साहेब हाशने खंड-2, 1978 : 780-90 उन्नीसवीं शताब्दी के पहले चौथाई वर्षों में, जब ब्रिटिश शासन यथार्थ रूप ले चुका था. पाँच भीषण अकाल पड़े, जिसमें लाखों लोगों की जान गई थी। आगे के पच्चीस वर्षों में दो अकाल पड़े जिसमें चार सौ हज़ार लोगों की मृत्यु हो गई थी. आगे के पच्चीस वर्षों में 6 अकाल पड़े और मृतकों की संख्या 25 लाख हो गई. साफ़ शब्दों में कहें तो यह ब्रिटिश सरकार की नीतियों का परिणाम था. उनका उद्देश्य हमेशा देश में व्यापार तथा उद्योग को सीमित करना था. यह कोई ग़लती नहीं थी, बल्कि जानबूझकर ब्रिटिश यह चाहते थे कि भारत हमेशा ब्रिटिश सामान का ग्राहक बना रहे. यह ब्रिटिश राज्य की मान्य नीति थी. यह वही नीति थी जिस कारण भारत सदियों तक ग़रीब ही रहा। ग़रीबी के प्रसार के इस कार्यक्रम से प्रभावित कौन हुआ? इन प्रभावित लोगों में सबसे अधिक दलित थे. ...सज्जनों, आप ब्रिटिश नौकरशाही की प्रशस्ति मात्र इस बात के लिए जारी नहीं रख सकते क्योंकि उन्होंने सड़कों और नहरों को सुधार, रेल लाइन बनाई और स्थिर शासन दिया. क़ानून व्यवस्था को बनाए रखने के लिए भी उनकी प्रशंसा करने का पर्याप्त आधार है, लेकिन कोई भी आदमी, जिनमें दलित शामिल है ख़ाली क़ानून व्यवस्था के कारण ज़िंदा नहीं रह सकता.

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 371

ये जातियाँ शहरीकरण, कोर्ट-कचहरी तथा हिंदू धर्म के साथ जुड़कर और मज़बूत हुईं (निकोलस बी. डर्क्स, 1987)।

औपनिवेशिक काल में सफ़ाई कामगारों की स्थिति

विजय प्रसाद का शोध कार्य इस बात का खुलासा करता है कि शुरुआत में मोहल्ले स्तर की सफ़ाई का अस्तित्व दिल्ली शहर में था लेकिन राज्य ने म्युनिसिपल कॉरपोरेशन स्थापित किया। यही कॉरपोरेशन बाद में नव-औपनिवेशिक सरकार की मध्यवर्ती सत्ता के रूप में उभरे। दिल्ली तथा गुजरात के अन्य हिस्सों में कामगार समुदाय के लोगों की ड्यूटी राज्य में सफ़ाई व्यवस्था करने की मानी जाती है। समान रूप से इसी प्रकार शहरी सफ़ाई व्यवस्था का विस्तार राजस्थान की म्युनिसिपल /रेलवे व्यवस्था में भी हुआ होगा। इस सफ़ाई व्यवस्था की शुरुआत निजी घरों में साफ़-सफ़ाई के पेशे और बदले में सेवा देने वाले घरों से रोटी, कपड़े तथा ख़ुशी के अवसरों पर उपहार इत्यादि प्राप्त करने से हुई। इस अवस्था में कस्टमरी राइट्स दिल्ली में तथा वतनदारी सिस्टम गुजरात में लागू किया गया। इसको लेकर सफ़ाई कामगार तबका राज्य का विरोध करता है। विजय प्रसाद का कहना है कि बहुत से सफ़ाई कर्मचारी राज्य के नियंत्रण से पहले अपने अनुसार कार्य (रिलेटिव इंडिपेंडेंस) किया करते थे, लेकिन इसका मतलब यह क़तई नहीं है कि वे आत्मनिर्भर थे।[10] जैसा कि रॉबर्ट डेलिज का कहना है कि अधिकाधिक मामलों में अछूत, औपनिवेशिक काल में राज्य के अर्द्ध सेवक के रूप में देखे जाते थे।[11] यह जानना आवश्यक है कि आख़िर राज्य ने ऐसी कौन सी (आधुनिक ज्ञान पर आधारित) व्यवस्था अपनाई जिसने सफ़ाई कामगारों को आत्मनिर्भर बनाने के बजाय मैला ढोने की संरचना में फँसा दिया। आरंभिक दिनों में ईस्ट इंडिया कंपनी के पास विकसित नौकरशाही नहीं थी। अंग्रेज़ मुख्यतः अपने अधीनस्थ भारतीय कर्मचारियों से काम चलाते थे। इतिहासकार इस संदर्भ में कहते हैं कि 'औपनिवेशिक सरकार ने साफ़-सफ़ाई विभागों में विशेषकर एक ही जाति के लोगों को काम पर रखा।'[12] इसी जाति के लोग पंजाब में चूहड़ा जाति के नाम से जाने गए।

दिल्ली म्युनिसिपल कॉरपोरेशन तथा सफ़ाई कर्मचारी (1863-1912)

ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में सन 1872 में म्युनिसिपल ऐक्ट लाया गया। इसके तहत शहरों, क़स्बों, छावनियों व महानगरों की सफ़ाई को प्रशासनिक अधिकार के रूप में लिया गया (रत्न रावण दर्शन, 2010)। इस दौरान प्रभावी प्रणालियाँ अपनाई गईं। प्रथम-शुष्क शौचालयों से मानव-मल को भरकर ठेला गाड़ियों के माध्यम से फेंकने ले जाया जाता था। दूसरा, सफ़ाई कामगारों द्वारा मल से भरी टोकरी को सिर पर ढोकर दूरस्थ इलाक़ों में फेंकना सफ़ाई व्यवस्था

[10] विजय प्रसाद (2000) : 1.

[11] रॉबर्ट डेलिज (1999) : 119.

[12] विजय प्रसाद (2000) : 25.

13Sumit Anjuwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 372

का हिस्सा था। इसमें झाड़ू लगाना, गलियों से मल साफ़ करना, कीचड़ साफ़ करना, शुष्क शौचालय की सफ़ाई शामिल थे।

इस पूर्व आधुनिक शहरी स्वच्छता संरचना के आने से पहले कूड़ा-करकट और मल-व्ययन हेतु ठेला गाड़ियों तथा झाड़ू जैसे तौर-तरीक़ों का प्रयोग होता था। मल-व्ययन या संग्रहण की ग़ैर-मशीनीकृत प्रणाली के कारण ही नालियों की कीमतों में भारी बढ़ोतरी हुई। इसके साथ-साथ मैला ढोने वालों के सस्ते श्रम शक्ति का इस्तेमाल किया गया। इस औपनिवेशिक काल में मैला-ढोने जैसी प्रथा के दो रूप थे। पहली-सार्वजनिक और दूसरी घर से बाहर और निजी घरों में मैला ढोने की प्रथा (विद्या रवीन्द्रनाथन, 2000)।

टी. आर. भास्करन की रपट एवं उनका अध्ययन बताता है कि भारत में स्वतंत्रता से पूर्व *ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ़ हाईजिन ऐंड पब्लिक हेल्थ* के जुड़ाव के परिणामस्वरूप बोर-होल लैट्रिन को विकसित किया गया। सर्वप्रथम बंगाल में इसका प्रयोग किया गया। बोर होल लैट्रिन/शौचालय का व्यास 40 सेमी होता था। ये बोर होल लैट्रिन पक्की ज़मीन पर बनाई जाती थी। इनकी गहराई 6-8 मी. होती थी। यह सत्य है कि इस प्रकार के प्रयासों में कुछ हद तक सफलता मिली। इसके साथ ही व्यवहार में बड़ी चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा। इन चुनौतियों में विशेषकर बोर होल पाखानों को घरों के बाहर कैसे लगाया जाए; पहले से लगाए गए पाखानों को साफ़ कैसे किया जाए; इन पाख़ानों का मानव-मल से लबालब भरने पर भिनभिनाते मक्खियों के जत्थे से कैसे निज़ात पाई जाए आदि शामिल थीं। परिणामस्वरूप विस्तृत स्तर पर इसे स्वीकार नहीं किया गया। 1949-50 में पश्चिम बंगाल में गड्ढ़ा खोदकर बनाए गए पाख़ानों की गहराई 10 से 20 मी. रहती। इसके साथ-साथ इनके व्यास 3 मी. के रखे जाते थे। व्यावहारिक दृष्टि से इस प्रकार के पाखाने उन स्थानों पर निर्मित करना मुश्किल था जहाँ पर जल स्तर उच्च हो। अतएव इस प्रकार के प्रयोगात्मक उदाहरण भले ही सिविलाइज़ेशन या शहरीकरण और विकास के नव प्रतिमान के सबूत हो सकते थे, परंतु सफ़ाई कामगारों के मन में बनी मैला ढोने की चिंता का कोई समाधान न तो राज्य का आधुनिक तकनीकी ज्ञान निकाल पाया, और न ही शहरीकरण की प्रक्रिया इसका कोई हल निकाल सकी। स्वतंत्रता के उपरांत राज्य तथा केंद्रीय सरकारों ने इस समस्या से मुक्ति हेतु कार्य आरंभ किए। सरकार द्वारा केन्द्र और राज्य स्तर पर समितियों का निर्माण किया गया। इसमें से कुछ महत्त्वपूर्ण समितियाँ – सफ़ाई कामगारों की जीवन परिस्थिति जाँच समिति (बर्वे समिति) 1949, सफ़ाई कामगारों की परिस्थिति जाँच समिति (मलकानी समिति)1960, सफ़ाई के प्रथागत अधिकारों पर समिति (मलकानी समिति) 1966 थीं।

जहाँ तक मलकानी समिति का सवाल है, स्वच्छकारों के पारंपरिक अधिकारों के बारे में उसका कहना था : मल उठाना परिवार की ज़िंदगी का एक भाग है। शिक्षा की कमी और रोज़गार के अवसरों की ग़ैर-मौजूदगी के चलते एक तरह का नियतिवादी रुझान लोगों में व्याप्त रहता है। अब वर्तमान में एक नया विमर्श पैदा हुआ है जो एक जटिल सवाल के रूप में है। आख़िर कौन

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 373

असंगठित मज़दूर है? किन मज़दूरों को इस श्रेणी में रखा जाए? इस मान्यता के अनुसार कुछ अन-औपचारिक क्षेत्र है, इसका पता इस बात से चलता है कि उन क्षेत्रों पर राज्य के नियंत्रण या नियम क़ानूनों के सांस्थानिक ढाँचे की कितनी अनुपस्थिति है। इसके पीछे दरअसल दो धारणाएँ काम करती हैं– एक तो यह कि अन-औपचारिक क्षेत्र के श्रमिक स्वरोज़गार में लगे लोग होते हैं। दूसरी यह कि वे ग़ैर-क़ानूनी तौर पर काम करते हैं। नैशनल लेबर कमीशन की मानें तो देखा जा सकता है कि असंगठित क्षेत्र में श्रम के सवाल के घेरे में कॉन्ट्रैक्ट लेबर, कंस्ट्रक्शन लेबर, जबरन ठेका मज़दूर प्रथा और सफ़ाई कर्मचारी आते हैं (थॉमस पोग और लुईस कबोरा, 2013)। 1981 की जनगणना के अनुसार असंगठित क्षेत्र की मज़दूरी लगभग 90 प्रतिशत भारतीय मज़दूरों की कार्य-शक्ति को प्रदर्शित करती है, जिसकी सकल घरेलू उत्पाद में 66.5 प्रतिशत की भागीदारी है। इसके बावजूद आज तक असंगठित क्षेत्र में लगे 'लेबर' की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है (अनुराधा बनर्जी, 2013)। पिछले कुछ दशकों में सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन ख़ासकर प्राथमिक रूप से वैज्ञानिक तकनीकी क्षेत्र और अर्थव्यवस्था में बदलाव ने कामगारों के एक समहू को ख़ासा प्रभावित किया है। आम तौर पर इसकी व्याख्या निजीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में की जाती है और इसे 'इनफ़ॉर्मल'(अन-औपचारिक) क्षेत्रों में काम करने वाले संगठित और असंगठित श्रमिकों के रूप में देखा जाता है। निजीकरण के बढ़ते इस दौर में दलित श्रम का एक बड़ा हिस्सा कार्यरत है इसलिए निजीकरण से पनपे निजी क्षेत्रों और उनमें आरक्षण की माँग भी बुलंद हुई है।

प्रकाश लुईस के अनुसार 1948 के औद्योगिक अधिनियम के अनुसार 18 सेक्टर निजीकरण का रूप ले रहे थे। ये अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के रोज़गार का कारण बने थे (प्रकाश लुईस, 2004)। भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण ने भारत के दलितों को आर्थिक रूप से कमज़ोर किया है (विवेक कुमार, 2001)। उपरोक्त नीतियों के तहत दलितों के बचे-खुचे रोज़गार के अवसर भी जाते रहेंगे। विवेक कुमार का तर्क है कि इस दौर में सबसे पहले सरकारी नौकरियों में दलितों के आरक्षित पदों पर गाज गिरेगी क्योंकि इन नीतियों के तहत सरकार अपने कर्मचारी तंत्र का आकार कम करने के लिए कर्मचारियों के पदों में कटौती करेगी। भारतीय रेलवे में बढ़ता स्वच्छता का काम और ऊपर से प्राइवेट कंपनियों को ठेका देने के कारण कर्मचारियों के तंत्र का आकार छोटा यानि 15-20 कर्मचारियों तक का होता जा रहा है जिससे असंगठित मज़दूरी बढ़ी है।

अनुभव का सच

दिनांक 5 सितम्बर, 2020 को चीफ़ हेल्थ इंस्पेक्टर से अनुमति के उपरांत स्टेशन पर सर्वे करने हेतु आगे की कार्यवाही पूरी हो सकी। फ़ील्ड स्टडीज़ के दौरान यानि नई दिल्ली स्टेशन पर सर्वे रिसर्च के दौरान काम से थक कर बैठे बाबू (सफ़ाई कर्मचारी) से मेरी मुलाक़ात हुई। बाबू ने बताया– मैं बिहार के बाँका ज़िले का रहने वाला हूँ। मैंने पूछा कि, क्या कभी कार्यस्थल पर काम

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 374

के दौरान आप अपमानित किए गए? जवाब देते हुए बाबू बोले कि बहुत बार नई दिल्ली स्टेशन पर हज़ारों यात्रियों की आवाजाही की दौड़-भाग के दौरान जब-जब हम फुट ओवर ब्रिज की सफ़ाई करते हैं, तब-तब गाड़ी पकड़ने के लिए भागते यात्री हम से टकरा जाते हैं। ऐसे में उनके मुँह पर हमारे लिए, भंगी परे हट जा जैसे शब्द रटे-रटाए रहते हैं। दीपक (ज़िला सोनीपत) पिछले 4 वर्षों से नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर अस्थाई सफ़ाई कर्मचारी के रूप में कार्यरत हैं। जब दीपक बालगुहेर से पूछा गया कि क्या आप कार्यस्थल पर काम के दौरान अपमानित किए गए तो दीपक ने बताया कि बहुत बार हमें स्वच्छता प्रबंधन के दौरान सुपरवाइजर द्वारा अपमानित किया जाता है। जब-जब हम सीवरेज सफ़ाई के लिए आना-कानी करते हैं, तब-तब हमें सुपरवाइजर द्वारा नौकरी से निकाल देने की धमकी दी जाती है। इस अमानवीय कार्य के लिए न तो हमें उचित वेतन दिया जाता है और न ही सामाजिक सुरक्षा। प्रवीण वाल्मीकि (उत्तराखंड, ज़िला हरिद्वार) भी दीपक बालगुहेर की भांति नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर अस्थाई स्वच्छता श्रमिक है। प्रवीण वाल्मीकि ने अपमानित किए जाने से जुड़े अनुभव को साझा किया। उन्होंने बताया कि कार्यस्थल पर काम के दौरान अपमानित किए जाने जैसी घटना आम बात है। कार्यस्थल पर पोंछा लगाते समय जब मैंने यात्री को चिप्स का ख़ाली पैकेट कूड़ेदान में न फेंकने पर जुर्माना भरने को बोला तब उसके अंदर की जातिवादी मानसिकता बाहर आ गई। यात्री ने मुझे धमकाते हुए कहा– अरे अनपढ़ भंगी मुझे नियम मत सिखा।

लंच के समय मैंने सभी सफ़ाई कर्मचारियों के साथ इकट्ठा होकर लंच करने की गुजारिश की लेकिन अधिकांश सफ़ाई कर्मचारी हिचकिचाते हुए बोले – अरे भइया! आप हमारे साथ कैसे भोजन कर सकते हैं। यात्री तो हमें देखते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। मैं सुपरवाइजर के स्टोर रूम की तरफ़ जा पहुँचा जहाँ सभी अस्थाई स्वच्छता श्रमिक दोपहर का भोजन करते हैं। इस बीच बेंच पर खाने का सामान रखकर बैठी गीता बहोत दिखाई दीं। गीता बहोत मुझे देखते ही असहज सी महसूस करने लगीं परंतु आर. महावेश्वरण (जो नई दिल्ली स्टेशन पर सुपरवाइजर हैं) के साथ होने से बातचीत करने को तैयार हो गईं। गीता बहोत से मैंने पूछा क्या आप कार्यस्थल पर काम के दौरान अपमानित हुईं? इस बारे में कुछ बताइए? गीता बोली भइया! इस प्रकार से तो अपमान कई बार सहन करना पड़ता है। सिर्फ़ इतना ही नहीं, कई बार तो मर्दों की बुरी नज़र से भी अपना आँचल बचाना होता है परंतु कर भी क्या सकते हैं? मेहनत करके अपने बच्चों का पेट भरना है। इसी कारण अपमान और शोषण सहन करना पड़ता है। कार्यस्थल पर अपमानित किए जाने वाले प्रश्न के संबंध में कविता थापा ने दो टूक शब्दों में बताया – सर! अपमान से ज़्यादा मजबूरी है। ऐसे में कई बार शारीरिक शोषण और ज़ुबान से किए जाने वाले अपमान का कोई मोल नहीं रह जाता।

अस्थाई स्वच्छता श्रमिकों की दयनीय स्थिति के साथ-साथ काम के हालात से जुड़े तथ्य भी इन साक्षात्कारों के दौरान सामने आए। उत्तर-पश्चिमी रेलवे में शामिल बांधी कुई स्टेशन पर कार्यरत सोना ने साक्षात्कार में बताया – 'पहले दिन जब मैं शौचालय और नाली साफ़

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 375

कर रही थी, मेरा पैर फ़िसल गया और मेरा पैर पिंडली तक मल में डूब गया। मैं चीखी और भाग गई। उसके बाद मैं घर आई और रोती रही। मैं जानती थी कि मेरे लिए सिर्फ़ यही काम करने को है'(सोना : भरतपुर शहर, राजस्थान)। अनित कुमार (अलीगढ़ निवासी, उत्तर प्रदेश) पिछले 5 वर्षों से साफ़-सफ़ाई, मल-व्ययन के साथ-साथ सीवरेज की सफ़ाई कर रहे हैं। कार्यस्थल पर अपमान के संबंध में बोलते हुए उन्होंने कहा कि हमारी तो न जाने कितनी पीढ़ियाँ मैला ढोने में गुज़र गईं। अपमानित होना तो आम बात है। उन्होंने बताया कि उनके पिता भी दिहाड़ी मज़दूर रहे। आज भी वे सफ़ाई के इस पेशे में लगे हुए हैं। जहाँ तक सवाल कार्यस्थल पर होते अपमान का है, अनित ने बताया कि जुलाई माह (2016) का समय था। सी.एच.आई. साहब और हम तमाम अस्थाई सफ़ाई कामगार उनके निर्देश पर रेलवे कॉलोनी में साफ़-सफ़ाई के लिए पहुँच गए। इस दौरान गर्मी और तापमान चरम पर था। अब प्यास लगने पर सी.एच. आई साहब ने कहा कि आप किसी भी स्टाफ के घर से पीने का पानी मंगवा लीजिए। साहब के कहने पर हम स्टाफ़ के घर से पीने का पानी लेने पहुँच गए। वहाँ जो भी हुआ उसके बाद जान पड़ा कि हम जातिगत संरचना का ऐसा हिस्सा हैं, जहाँ मात्र पानी की बोतल छू लेने मात्र से वह अन्य लोगों के लिए व्यर्थ हो जाती है। पानी पीने के उपरांत ख़ाली बोतल को जब मकान मालिक की कुंडी पीटकर वापिस लौटना चाहा तभी उन्होंने कहा – अरे ये बेकार हो गई है हमारे लिए। इस बोतल को अब तुम ही रख लो। इससे बड़ा अपमान शायद ही जीवन में मुझे झेलना पड़ा हो।

23 मार्च, 2019 को 28 वर्षीय नवीन कुमार (जो राजस्थान में अलवर शहर के निवासी हैं) के साथ किए गए इंटरव्यू के माध्यम से स्टेशन पर सफ़ाई कामगारों के साथ होते दुर्व्यवहार का पता चला। नवीन कुमार ने बताया कि हमें बार-बार यात्रियों और प्रबंधकों द्वारा कठोर व्यवहार सहते हुए अपमानित होना पड़ता है। सिर्फ़ इतना ही नहीं ट्रैक्स की सफ़ाई के दौरान अधिक श्रम करने के बाद भी सुपरवाइजर हमें आलसी कहकर बदनाम करता है। इस संबंध में अपना व्यक्तिगत अनुभव साझा करते हुए उन्होंने कहा कि जैसाकि आपने देखा ही है कि हमारा मुख्य लक्ष्य 'स्वच्छ रेलवे' के उद्देश्य को पूरा करना है। इसके चलते कई बार शोषण की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। दो सप्ताह पहले रोज़ की तरह मैं तेज़ बारिश में रेलवे पटरियों पर बने जाम ड्रेन में नंगे हाथों को डालकर सफ़ाई कर ही रहा था तभी सुपरवाइजर ने ऊँची आवाज़ में आदेश जारी कर दिया कि 'अरे ओ नाजुक कली, तेज़ी से काम ख़त्म कर दे।' आगे के ड्रेस भी तुम्हें ही साफ़ करने हैं। तुम सब आलसी हो, तुम्हें तो नौकरी पर रखना ही नहीं चाहिए। इस प्रकार से दिन भर में न जाने कितनी बार हमें बेइज़्ज़त कर दिया जाता है।

अलवर रेलवे स्टेशन पर किए गए साक्षात्कार के दौरान नरेश, अलवर राजस्थान के निवासी (जो अस्थाई सफ़ाई कर्मचारी के रूप में स्टेशन पर कार्यरत हैं) ने बताया कि मैं इस जंक्शन पर पिछले 9 सालों से कार्य कर रहा हूँ। इस दौरान बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। उन्होंने काम के दौरान कार्यस्थल पर किए जा रहे दुर्व्यवहार को ऊँची श्रेणी का

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 376

बतलाया। नरेश ने व्यक्तिगत रूप से हुए अपमान से संबंधित तथ्यों को साझा किया। उन्होंने बताया कि मैं अलवर स्टेशन पर खड़े पानी के टैंक तथा निर्मित सीवरों की सफ़ाई करता हूँ। सीवरेज़ की सफ़ाई के दौरान आँखों में जलन के कारण कई बार बैठ जाता हूँ क्योंकि सीवर में जहरीली गैसें होती हैं। कहीं-कहीं सीवरों पर काफ़ी भारी ढक्कन ढके होते हैं। उन्हें उठाने में चोट तक लग जाती है। इन सीवरों के ढक्कन खोलने मात्र से ही काफ़ी थकान हो जाती है। इस कड़े परिश्रम के दौरान हाथों से मल-व्ययन, थूक, खँखार, गारा इत्यादि को हाथों से साफ़ करना पड़ता है। टैंक से जुड़े सीवरेज़ की सफ़ाई के दौरान पानी पीने के लिए आते लोग हमें अछूत मानकर घृणा करते हैं और नाक-मुँह सिकोड़ने लगते हैं। सुकेश (अस्थाई सफ़ाई कर्मचारी) ने बताया – शौचालयों के प्रयोग से पहले रेलवे प्रशासन की ओर से यात्रियों को सूचित करते हुए कहा गया कि जहाँ स्वच्छता होती है, वहाँ ईश्वर का वास होता है। बापू के इस सन्देश में यात्रियों की कोई ख़ास रुचि नहीं। शौचालयों के मानव मल से भरे होने के बाद भी यात्री इतनी अनदेखी करते हैं कि शौचालय का पुनः प्रयोग कर डालने से भी नहीं हिचकते। मल-मूत्र लबालब भर जाने के कारण शौचालयों से बाहर गिरता है। आप बताएँ कि कैसे बिना नागरिकों की भागीदारी के रेलवे स्वच्छ बन सकेगा। जैसा कि नीचे दिए हुए ग्राफ़ से समझा जा सकता है कि जाति और सफ़ाई का आपसी संबंध बहुत गहरा है। उत्तरदाताओं में ज़्यादातर ने बताया कि जाति और जाति से जुड़े पेशे के कारण उन्हें नीचे देखा जाता है।

क्या आपको लगता हैं क्योंकि आप भंगी/ सफाई कर्मचारी हैं
इस लिए अन्य आपको नीचा देखते हैं।

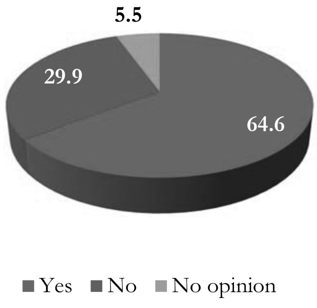

दिल्ली तथा जयपुर मंडल की केस स्टडीज़ : मुख्य निष्कर्ष

फ़ील्ड स्टडीज़ से प्राप्त अनुभव ने सिखाया कि सरकारी तंत्र की मनमानी किसी तानाशाही व्यवहार से कम नहीं। प्रत्येक स्तर पर स्टेशन सर्वे रिसर्च हेतु अनुमति पत्र की प्राप्ति या सरकारी दस्तावेज़ों को देखना मेरे लिए बिल्कुल ऐसा ही था जैसे अस्थाई स्वच्छता श्रमिकों के लिए रोज़मर्रा की ज़िंदगी में वेतन प्राप्ति का संघर्ष।

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 377

फ़ील्ड स्टडीज़ के दौरान स्वच्छता प्रबंधन से जुड़े व्यक्तिगत पहलुओं को देखने के उपरांत कहा जा सकता है कि स्वच्छता एक सतत प्रक्रिया है। एक तरफ़ जहाँ स्टेशनों, प्लेटफ़ॉर्म तथा रेलगाड़ियों को उचित रूप से स्वच्छ स्थिति में रखने का यथासंभव प्रयास तेज़ गति पकड़े हुए है, वहीं दूसरी तरफ़ नियमित रूप से प्लेटफ़ॉर्म, फुट ओवरब्रिज की सफ़ाई, ट्रैक्स की सफ़ाई, एप्रेन की सुचारु व्यवस्था जैसी चुनौतियाँ बरक़रार हैं। कई जंक्शंस पर मैनपॉवर की कमी भी देखने को मिली जिसके चलते अस्थाई स्वच्छता श्रमिकों को कम वेतन पर अधिक कार्य करना पड़ रहा है।

भारतीय रेलवे में स्टेशनों और गाड़ियों की सफ़ाई में सुधार की दिशा में कार्य हेतु भारतीय रेलवे द्वारा की गई पहलक़दमियाँ इस प्रकार हैं – लगभग 950 स्टेशनों पर यंत्रीकृत सफ़ाई ठेकों की शुरुआत और लगभग 1,300 स्टेशनों पर कचरा उठाने और कचरा निपटाने हेतु ठेका प्रबंधन का आरम्भ किया गया है। वाटर जेट से धोने की सुविधा के लिए प्लेटफ़ॉर्म, ट्रैक्स पर कंक्रीट धोने योग्य एप्रेन की व्यवस्था करना, लगभग 700 स्टेशनों पर सफ़ाई गतिविधियों की निगरानी के लिए सी.सी.टी. वी. का उपयोग तेज़ कर दिया गया है। गाड़ियों के शौचालयों सहित सवारी डिब्बों की सफ़ाई दोनों छोरों पर की जाती है। यह यंत्रीकृत होती है।

लेकिन दूसरी तरफ़ स्वच्छता प्रबंधन के क्षेत्र में इस दौरान रेलवे स्टेशनों पर निर्मित ट्रैक्स के साथ में बनी नालियों की सफ़ाई सबसे बड़ी चुनौती है। परिणामस्वरूप रेलवे में आज भी बारिश के समय जाम नालियों को हाथों से खोलना पड़ता है। सामान्यरूप से प्लेटफ़ॉर्म पर छोटे बच्चों को मलत्याग करवाने पर अस्थाई सफ़ाई कर्मचारी इसे सुपड़ी की सहायता से साफ़ करते हैं। इन हालातों के बीच कानून के उल्लंघन की समस्या साफ़ नज़र आती है।

स्वच्छ भारत मिशन की क़वायद

स्वच्छता के लिए सबसे बड़ा अभियान स्वच्छ भारत मिशन है। ख़ासकर एक इकाई के रूप में सुचारु रूप से चलाए जाने के लिए इसके विभिन्न घटकों को मिलाकर अनुमानित लागत 62,009 करोड़ रुपये तय की गई। इसमें केंद्र सरकार का अंशदान 4623 करोड़ रुपयों का रहा। इसके अतिरिक्त एक राशि 48,274 करोड़ रुपये की भी है। इसमें राज्य सरकार का अंशदान 25 प्रतिशत वित्तपोषण तय किया गया है।

इस अभियान में कहीं भी शुष्क शौचालयों, खुली नालियों, रेलवे लाइनों से मैला उठाने वालों, सेप्टिक टैंक की सफ़ाई करने वालों का कोई ज़िक्र नहीं। इस अभियान के तहत जो शौचालय बन रहे हैं, वे भी परंपरागत हैं। इस अभियान के साथ मैनुअल स्कैवेंजिंग जैसी बड़ी समस्या को अनदेखा न करके बल्कि साथ जोड़कर विश्लेषण किया जाना चाहिए। परंपरागत शौचालयों के स्थान पर जैव शौचालयों के निर्माण पर अधिकाधिक बल दिया जाना चाहिए, ताकि अपशिष्ट पदार्थों के निपटान हेतु पुनः स्कैवेंजर्स की ज़रूरत न पड़े और स्वच्छता की ओर क़दम बढ़ाते हुए स्वच्छता के सच्चे सिपाहियों की ज़िंदगी बेहतर बन सके। सिर्फ़ इतना

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 378

ही नहीं आज भारत में सतत (टिकाऊ) स्वच्छता व्यवस्था के विकास की आवश्यकता है। सतत स्वच्छता व्यवस्था के विकास से अभिप्राय है जो सामाजिक-आर्थिक रूप से स्वीकार्य हो तथा जातीय रूप से भी इस व्यवस्था को स्वीकार किया जा सकता हो। उत्तर तथा उत्तर-पश्चिमी रेलवे मंडल की केस स्टडीज़ के दौरान स्टेशनों पर कार्यरत चीफ़ हेल्थ इंस्पेक्टरों तथा स्वच्छता श्रमिकों से साक्षात्कार के उपरांत स्वच्छ भारत अभियान एवं स्वच्छता नीति का ज़मीनी स्तर पर कितना और क्या प्रभाव पड़ा, इस संबंध में कुछ अनूठे तथ्य सामने आए। फ़ील्ड पर जाने से पहले निर्मित प्रश्नावली की शृंखला में कुछेक सवाल स्वच्छता – नीति से भी जुड़े थे जिनके भिन्न-भिन्न उत्तर भी उत्तरदाताओं की तरफ़ से मिल सके। स्वच्छ भारत अभियान के उपरांत किस प्रकार के मशीनीकृत यंत्र दिए गए, जैसे सवालों का भी जवाब मिला।

स्वच्छता श्रमिकों व चीफ़ हेल्थ इंस्पेक्टरों द्वारा दी गई जानकारियाँ नीचे की सारणियों में दी गई हैं। सारणी में सभी प्राप्त यंत्रीकृत उपकरणों का प्रतिशत दर्शाया गया है। सारणी की प्रथम कॉलम में प्राप्त रेडियों की कुल संख्या का 21.4 प्रतिशत हिस्सा स्वच्छ भारत अभियान के बाद यंत्रीकृत स्वच्छता प्रबंधन ये जुड़ता दिखाई दे रहा है। इस प्रकार से सिग्नल डिस्क स्क्रबर का 7.1 प्रतिशत हिस्सा यंत्रीकृत स्वच्छता प्रबंधन का हिस्सा दिखाता है।

प्राप्त मशीनीकृत यंत्र

(Mechanical Instrument Received)

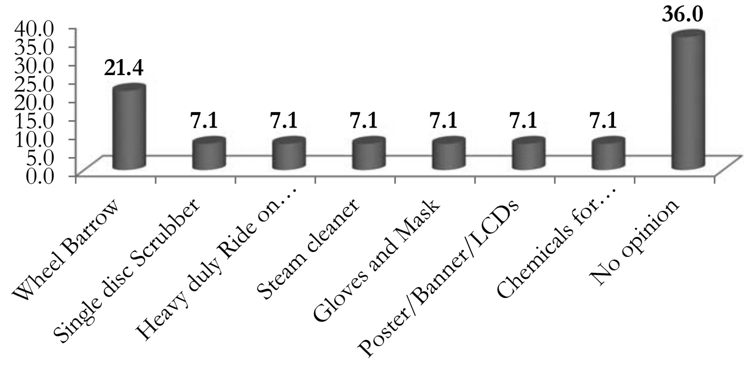

हैवी ड्यूटी राइट ऑन स्वीपर मशीन का कुल 7.1 प्रतिशत हिस्सा मशीनीकृत सफ़ाई प्रबंधन का हिस्सा है। सामान्य रूप से कुल स्वच्छता मशीनीकृत व्यवस्था में स्टीम क्लीनर का 7.1 प्रतिशत, गल्वस और मॉस्क का 7.1 प्रतिशत, पोस्टर, बैनर, एल.सी.डी. का 7.1 प्रतिशत, साफ़-सफ़ाई के केमिकल रसायन का 7.1 प्रतिशत हिस्सा है। इस सारणी में किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया न देने वालों में कुल 36.0 प्रतिशत लोग शामिल हैं।

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 379

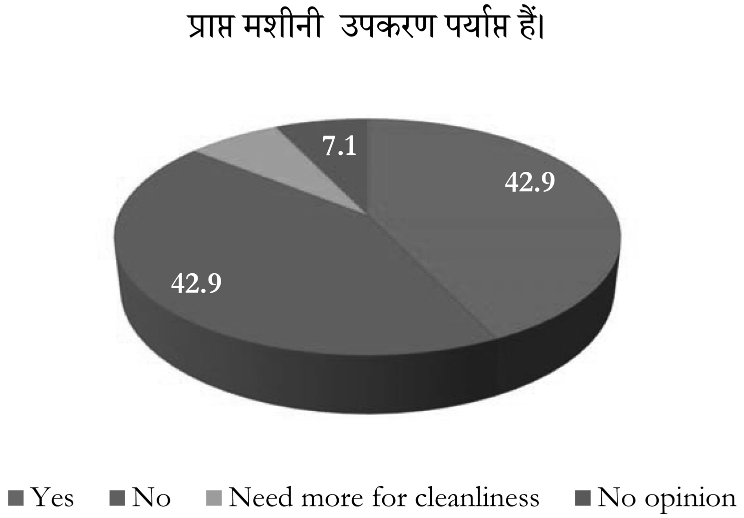

इस प्रकार से प्रश्नावली में शामिल अन्य प्रश्नों की सहायता से स्वच्छ भारत अभियान के दौरान मशीनों के आवंटन की जानकारी और तथ्य हासिल हुए, जब चीफ़ हेल्थ इंस्पेक्टरों के साथ साक्षात्कार किया गया। प्रस्तुत सारणी के माध्यम से समझ सकते हैं कि स्वच्छ भारत अभियान के उपरांत कितने प्रतिशत चीफ़ हेल्थ इंस्पेक्टरों को लगता है कि मशीनीकृत यंत्र पर्याप्त मात्रा में हैं। सारणी में उत्तरदाताओं के जवाब को कुल प्रतिशत में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी के अनुसार मशीनीकृत सफ़ाई यंत्र पर्याप्त हैं। इस प्रश्न के उत्तर में 42 प्रतिशत मानते हैं – हाँ, दिए गए मशीनीकृत यंत्र पर्याप्त हैं। जहाँ पर्याप्त नहीं है, वहाँ का प्रतिशत 42.9 है। 7.1 प्रतिशत चीफ़ हेल्थ इंस्पेक्टों का मानना है कि अभी मशीनीकृत यंत्रों की ज़्यादा ज़रूरत है ताकि रेलवे स्टेशन पर सफ़ाई व्यवस्था को दुरुस्त किया जा सके। इसके अलावा 7.1 प्रतिशत ऐसे चीफ़ हेल्थ इंस्पेक्टर हैं जिन्होंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

प्रश्नावली में शामिल स्वच्छता नीति-नियोजन से जुड़े प्रश्न की सहायता से या स्टेशनों पर

क्या स्वच्छ भारत अभियान के उपरांत डस्टबिन्स पर्याप्त हैं?

विकल्प	**(%)**
100 तक	50.0
100-200	28.6
200-400	21.4

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 380

कूड़ेदान के प्रर्याप्त होने संबंधित जानकारी के कई आँकड़े हुए। 50 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि स्टेशनों पर 100 तक कूड़ेदान पर्याप्त हैं। वहीं टेबल का दूसरे कॉलम के अनुसार 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि स्टेशन पर कूड़ेदानों की पर्याप्तता 100-200 तक है। इसके अलावा तृतीय कॉलम के अनुसार 21.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि 200-400 संख्या तक कूड़ेदान स्टेशन पर पर्याप्त हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि शुचिता का विचार सीधा-सरल नहीं है। इसे सफ़ाई कर्मचारी की नज़र से समझना होगा जिसे अपने हाथों से दूसरों के मलत्याग को साफ़ करना पड़ता है। सवाल ये भी सोचने लायक़ है कि इतने सरकारी प्रयासों के बाद भी भारत आज तक मैला प्रथा से मुक्त क्यों नहीं हो पाया है? सरकारों द्वारा जब भी मैला साफ़ करने वालों से संबंधित आँकड़े सर्वे के माध्यम से प्राप्त किए जाते हैं, तब-तब उन आँकड़ों को कम दिखाकर सरकारों द्वारा ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ लेने की क़वायद नज़र आती है। उत्तर प्रदेश का नाम इस संबंध में सबसे ऊपर है। जब स्वतंत्र रूप से मैला साफ़ करने वालों के संबंध में आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं, तब उनमें इनकी संख्या अधिकाधिक में नज़र आती है।

इस प्रकार से स्वच्छता प्रबंधन व्यवस्था पर लगे इस बदनुमा दाग़ को बनाए रखते हुए

शीर्ष 10 राज्यों में मैला ढोने वालों की संख्या

राज्य	सर्वे के लिए चुने गये जिलों की संख्या	मैनुअल स्कैवेंजर्स के लिए रजिस्ट्रेशन कराने वालों की संख्या	राज्य सरकार द्वारा चिन्हित मैनुअल स्कैवेंजर्स
उत्तर प्रदेश	47	41068	19712
मध्य प्रदेश	14	8572	562
उत्तराखंड	4	7440	6033
राजस्थान	20	7381	2590
महाराष्ट्र	14	7378	7378
बिहार	16	4757	0
आंध्र प्रदेश	5	2024	1982
कर्नाटक	6	1803	1754
तमिलनाडु	6	1433	62
पश्चिम बंगाल	6	1329	637

स्रोतः नेशनल सफाई कर्मचारी फाइनेंस एंड डेवलपमेंट कॉरपोरेशन (एनएसकेएफडीसी) के सर्वे अगस्त 2019 पर आधारित आंकड़े

13Sumit Anujwal_Layout 1 22-02-2024 15:56 Page 381

सरकारें सुधार की गुंजाइश को समाप्त कर देना चाहती हैं। अतएव हमें समझ लेना होगा कि न्याय की राजनीति करने वालों ने भी अभी तक अति दलित जातियों की सुध नहीं ली। वैज्ञानिक दृष्टि से शौचालयों की रचना, सफ़ाई का समय और उसकी पद्धति आदि के बारे में वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक तरीक़ा अपनाने की ज़रूरत अभी भी बनी हुई है।

संदर्भ

अक़ील अहमद (1993), 'द मेकिंग ऑफ़ साइंस ऐंड टेक्नोलॉजी : हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव', (सं.), आर. एस. गणपति और स्मेनुअल पंत, *पब्लिक पॉलिसी इन इंडिया*, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली.

अनुराधा बनर्जी (2013), 'डिस्क्रिमिनेशन ऑफ़ दलित ऐंड मुस्लिम इन अर्बन हाउसिंग मार्किट : ए स्टडी बेस्ड ऑन नेशन कैपिटल रीजन', *वर्किंग पेपर सीरीज़*, खंड vii, नम्बर-2, इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ दलित स्टडीज़.

अब्दुल माज़िद (2000), *लीगल प्रोटेक्शन टू अन-ऑर्गेनाइज़ लेबर*, दीप पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड.

इशिता बनर्जी दुबे (2010) (सं.), *कास्ट इन हिस्ट्री*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

उषा एन. जे. राव (1999), *डिप्रेस्ड कास्ट इन इंडिया*, युग पब्लिकेशन, इलाहाबाद.

एफ़. जी. बेली (1957), *कास्ट ऐंड इकनॉमिक फ्रंटियर*, मैनचेस्टर युनिवर्सिटी प्रेस, मैनचेस्टर.

एस. महाजन बख़्तावर (2000), *माइक्रोब्स ऐंड डिज़ीज़*, होमी भाभा कल्चर फ़ॉर साइंस एजुकेशन, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ फंडामेंटल रिसर्च, बॉम्बे.

ओमप्रकाश वाल्मीकि (1999), *जूठन*, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली.

ओमप्रकाश वाल्मीकि (2008), *सफ़ाई देवता : वाल्मीकि – समाज की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली.

ओवेन एच. लिंच (1969), द *पॉलिटिक्स ऑफ़ अनटचेबिलिटी : सोशल मोबिलिटी ऐंड सोशल चेंज इन ए सिटी ऑफ़ इंडिया*, कोम्लबिया युनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यॉर्क

के. एस. चलम (2017), *आर्थिक सुधार और सामाजिक अपवर्जन : भारत में उपेक्षित समूहों पर उदारीकरण का प्रभाव*, सेज पब्लिकेशन.

के. बी. वर्मा (2015), *इंडियन रेलवे स्ट्रेटेजी फ़ॉर रिफ़ॉर्म*, फ़ाउंडेशन बुक, नई दिल्ली.

गीता रामास्वामी (2005), *इंडियन स्टिंकिंग मैन्युअल स्कैवेंजर्स इन आंध्र प्रदेश ऐंड देयर वर्क्स*, नवयाना प्रकाशन चेन्नई.

तरंगिनी श्रीरमण (2014), 'असॉल्ट ऐंड अस्सुएेज, रैशनलिटीज़ ऐंड एपिडेमिक कंट्रोल इन ब्रिटिश इंडिया', एन. मेनन (सं.), *क्रिटिकल स्टडीज़ इन पॉलिटिक्स एक्सप्लेन साइट्स पावर*, ओरिएंटल ब्लैक स्वान.

नंदिनी गुप्तू (2001), द *पॉलिटिक्स ऑफ़ दि अर्बन पुअर इन अर्ली ट्वेन्टिएथ सेंचुरी इंडिया*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

निकोलस बी. डर्क्स (1987), द हॉलो क्राउन : एथनो हिस्ट्री ऑफ़ दि इंडियन किंगडम, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

पॉल सव्चेंको (1987), *व्हाट इज लेबर*, प्रोग्रेस पब्लिशर, सोवियत यूनियन.

पोलिन कोलंडा (1964), 'रिलीजियस एंग्जायटी ऐंड हिंदू फ़ेथ', ई. बी. हार्पर (सं.), *रिलिजन इन साउथ एशिया*, युनिवर्सिटी ऑफ़ कोलंबिया प्रेस, कोलंबिया.

प्रकाश चन्द्र जैन दोषी (1996), *समाजशास्त्रीय अध्ययन*, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली.

प्रकाश लुइस (2004), 'अफ़रमेटिव ऐक्शन इन प्राइवेट सेक्टर', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, अगस्त 14,

2004.

प्रभु महापात्र (2004), 'श्रम और पूँजी संबंधों में राज्य का हस्तक्षेप', रमेश उपाध्याय (सं.) *श्रम का भूमंडलीकरण*, शब्द-संधान प्रकाशन.

बर्ट्रेंडल रसेल, https://underconsumed.medium.com/authority-and-the-individual-bertrand-russell-2a0bd8d4246a .

भाषा सिंह (2012), *अदृश्य भारत : मैला ढोने के बजबजाते यथार्थ से मुठभेड़*, पेंगुइन इंडिया, दिल्ली.

महेंद्रनाथ चतुर्वेदी और संजीव मल्होत्रा (1994), *रेलवे सेवा नियम एवं श्रम संहिता*, बिहारी ब्रदर्स.

रामविलास शर्मा (1982), *भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद*, खंड (1), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

रामशरण जोशी (2013), 'जाति, वर्ग, टेक्नोलॉजी और आधुनिकता', डॉ. रणजीत (सं.), *जाति का जंजाल*, मानवीय समाज प्रकाशन, लोक भारती पुस्तक विक्रेता तथा वितरक, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद.

रामा शर्मा (1995), *भंगी स्कैवेंजर इन इंडियन सोसाइटी : मार्जिनलाइज़्ड आइडेंटिटी ऐंड पॉलीटिसाईजेशन ऑफ़ द कम्युनिटी*, एम. डी. पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली.

रॉबर्ट डेलीज़ (1999), द *अनटचैबल्स ऑफ़ इंडिया*, बर्ग पब्लिशर्स, द युनिवर्सिटी ऑफ़ मिशिगन.

विजय प्रसाद (2000), *अनटचैबल फ्रीडम : ए सोशल हिस्ट्री ऑफ़ दलित कम्युनिटी*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

विनोबा (1960), *शुचिता से आत्मदर्शन*, अखिल भारतीय-सेवा संघ वर्धा.

विवेक कुमार (2001), 'दलित राजनैतिक संघर्ष : बसपा के बाद', डॉ. प्रकाश लुईस और प्रेम कपाड़िया'(सं.), *नई सदी भी तोड़ नहीं पाई उत्तर प्रदेश में अछूतपन को*, भारतीय सामाजिक संस्थान, नई दिल्ली.

वेब पता : http://articles.economictimes.indiatime.com/2014-11-17/news/561744601clean-india-indian-diaspora-prime-minister-narender-modi देखें : 9 दिसम्बर, 2014

www.bbc/news/word-asia-india-27639735 देखें : 1 जून, 2014

www.thehindu.com/news/national/social-sector-fund-slashed/article6637180.ec.alsosee:www.thehindu.com/news/national/modi-wanted-infrastructure-funding-protected/article6637184.ec.e देखें : 1दिसम्बर, 2014

शबनम बेग (2008), *मुस्लिम समुदाय में छुआछूत : बिरादरी के संदर्भ में*, नॉर्दन बुक सेंटर, नई दिल्ली.

शियर स्टिफ़न (2001), द *इंडियन रेलवेज़ स्ट्राइक 1974 : ए स्टडी ऑफ़ पॉवर ऐंड ऑर्गेनाइजेशन लेबर*, रूपा पब्लिकेशन, नई दिल्ली.

सुसन इ. चैपलिन (2002), 'स्कैवेंजर स्टिल मार्जिनलाइज़्ड', घनश्याम शाह (सं.), *दलित* ऐंड द स्टेट, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली.

सोपान जोशी (2018), *जल थल मल*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.